अभिज्ञान शाकुन्तलम् में चित्र संदर्भ

प्रो. राय आनंदकृष्ण

महाकवि कालिदास के नाटकों में **अभिज्ञान शाकुन्तलम्**[1,2] का अन्यतम स्थान है। मेरी दृष्टि में यह उनकी प्रौढ़रचना है। हमें यहाँ कई दृष्टियों से कला संदर्भ मिलते हैं: सर्वप्रथम तो वे संदर्भ हैं जिनमें सीधे सीधे चित्रकला, संगीत कला और कुछ अंशों में वास्तुकला के भी, उल्लेख हैं। यदि इन्हें सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इनमें जो कथ्य है उसके भीतर भी उनके गूढ़ और सारगर्भित संकेत मिलेंगे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थल भी आए हैं जिन्हें हम कला—संदर्भ के तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत ले सकते हैं। सर्वोपरि अनेक स्थलों पर हम महाकवि कालिदास की सौन्दर्य भावना (एस्थेटिक्स) और व्यक्तिगत रुचियों आदि का भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। यह विषय अत्यन्त रोचक और उपादेय होते हुए भी अत्यन्त व्यापक है।

शाकुन्तलम् के छठे अंक में चित्र-लेखन का प्रसंग ही विशद रूप में उपस्थित हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य में विरही जनों के "विरह-विनोदन" का यह एक अभिप्राय या मोटिफ था जिसके अनेक उदाहरणों से हम परिचित हैं। इस प्रसंग में महाकवि ने कुछ मार्के की बातें दी हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक है। स्थिति वहाँ से प्रारम्भ होती है जब शकुन्तला के प्रत्याख्यान के बाद जब राजा स्वयं अपने को बार-बार प्रताड़ित करता रहता है, पुनर्दर्शन की कामना करता है।[3] **शाकुन्तलम्** के इन प्रसंगों को समझने के लिए **मेघदूतम्** के कई समानान्तर संदर्भ महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी सहायता से हमें कई अवसरों पर बड़ी सहायता मिलती है, कुछ में और अधिक सूचनाएं मिलती हैं, ये बिम्ब और सुस्पष्ट होते हैं। दोनों में चित्र-लेखन विरह विनोदन का एक विशेष उपाय है। इस श्रेणी के उल्लेख तो प्राचीन साहित्य में प्राय: मिलते रहते हैं पर कालिदास की इन दोनों अमर कृतियों द्वारा हमें चित्र के निर्माण में, प्रक्रियाओं के विभिन्न स्तरों के सम्बन्ध में मार्मिक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। ये दोनों ही स्तर पर हैं: मानसिक (मनोवैज्ञानिक) और क्रियात्मक स्तरों पर। ये कालिदास के वृत्तान्त मात्र नहीं हैं बल्कि ये महाकवि के अपने स्वयं के दृष्टिकोणों को भी बार बार सूचित करे हैं, कई संकेत देते हैं।

मेघदूतम् के संदेश की रचना "यक्ष के उन्मन अवस्था में हुई थी"।[4] इसकी तुलना में हम **शाकुन्तलम्** के राजा को पर्युत्सुक पाते हैं।[5] इतना ही नहीं यहाँ कवि ने मंचीय व्यवस्था (स्टेज डाइरेक्शन) के रूप में अंकित किया है: उक्त श्लोक के बाद राजा व्याकुल होकर बैठ जाता है (पर्याकुल: तिष्ठति)। यद्यपि घटना-चक्र चलता रहता है पर इसी भावभूमि का विकास चित्र लेखन तक हमें ले जाता है अतएव इन दोनों अवस्थाओं में (शाकुन्तलम् एवं मेघदूतम् में) हम प्राय: समान मन:स्थिति पाते हैं। आज के संदर्भ में धरती की ठोस वास्तविकताओं से उठकर अनमन ठोस वास्तविकताओं से उठकर अनमने, पर्याकुलित अवस्था में पहुँचने पर कला का सृजन अथवा आस्वादन होता है। **शाकुन्तलम्** के नायक की उपर्युक्त उक्ति भी हंस-पदिका के संगीत सुनने के बाद की है। इसके पश्चात् राजा भ्रम या मद की अवस्था, जो "वियोगी का एक लक्षण" है, को प्राप्त होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए विदूषक की उक्ति है: "गृहीत अनेन पन्था उन्मत्तानाम्"। इसके बाद की उक्तियों में राजा का संताप और अधिक प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में यहाँ हम मेघदूतम् की तुलना में मानसिक उत्तेजना और बढ़ी हुई ही पाते हैं। इस पर चतुरिका (चेटी) चित्रित फलक लेकर प्रविष्ट होती है। यहाँ से महाकवि ने चित्र सम्बन्धी कई सटीक प्रयोग किए हैं। सर्वप्रथम "चित्रागता देवी", चित्रगता आकृति के अंतर्गत पारिभाषिक प्रयोग है।* इस पर विदूषक माधव्य द्वारा चित्र की तीन विशेषताओं को प्रकट किया गया है।[6] इनमें सर्वप्रथम तो हम यह पाते हैं कि चित्र "दर्शनीय" है जो चित्र की पहली शर्त है[7] अर्थात् उसमें कला-तत्त्व और रमणीयता है, तत्पश्चात् उसमें शकुन्तला मधुरावस्था (प्रेमासक्त) में दिखलाई गई है। यशोधर की "जयमंगला" टीका में चित्र के जो

''षडंग'' बताए गए हैं विदूषक के इस कथनांश की ''षडंग'' के ''लावण्य'' और ''भाव'' द्वारा व्याख्या की जा सकती है।[8]

वस्तुत: संस्कृत के नाटकों के विदूषक मूलत: विद्वान् होते थे अत: यहाँ हम स्पष्ट रूप से पाते हैं कि माधव्य (विदूषक) की उक्तियाँ शास्त्र-सम्मत और विवेचनात्मक थीं। दूसरी ओर सानुमती की उक्ति सामान्य जनों के स्तर की हैं।[9] परन्तु माधव्य की उक्ति ''स्खलतीव में दृष्टि:'' के लिए हमें **विष्णुधर्मोत्तर** के चित्रसूत्र की ओर देखना होगा। चित्रसूत्रकार ने इसे रेखाओं की स्निग्धता से जोड़ा है: सुस्निग्ध-विस्पष्ट-सु-वर्ण-रेखम् (41.15)। रेखा और वर्तना हो क्या लावण्य तक से क्या सम्बन्ध है इसे हम शाकुन्तलम् के ही एक अन्य स्थल पर आगे देखने की चेष्टा करेंगे। यहाँ इतना ही यथेष्ट है कि उक्त श्लोक उपर्युक्त चित्रसूत्र के ''रंग-वर्तना अध्याय'' का निष्कर्ष है, अंतिम श्लोक के रूप में उद्धृत है। यहाँ हम तनिक रुक कर अपनी चित्रकला के ऐतिहासिक विकास की ओर भी ध्यान दें। स्वयं चित्रसूत्र में इसी अध्याय में ''नागर'' शैली के चित्र की विशेषताओं में कहा ही: दृढोपचित-सर्वाङ्ग वर्तुलं न च-उल्बणम्।[10] इससे भी ऐसे प्रकार की आकृति की छवि उभरती है जो शाकुन्तलम् में ''स्खलतीव दृष्टि:'' द्वारा सूचित होती है। आशय यह है कि यह चित्र परंपरा इसके समानांतर ''कोणीय'' (ऐंगुलर) चित्रों से भिन्न है जिसका विकास हमें अपभ्रंश (''जैन'' अथवा ''पश्चिम भारतीय'') शैली के चित्रों में दिखलाई पड़ता है। चित्रसूत्र की इस उक्ति का ''वर्तना'' अध्याय में विवेचन है, यह उचित ही है क्योंकि ''वर्तना'' द्वारा ऐसा ''प्रभाव'' (एफेक्ट) उत्पन्न होता है। अब यहाँ एक और परिस्थिति उत्पन्न होती है: हम देख चुके हैं कि विदूषक (माधव्य) की उक्तियों में पांडित्य प्रकट होता है। यहाँ वह ''स्खलतीव दृष्टि:'' द्वारा 'वर्तना' का संकेत दे रहा है, स्वयं चित्रसूत्रकार हमें सूचित करते हैं कि चित्र में ''वर्तना'' की विचक्षणों द्वारा प्रशंसा होती है।[11] इस प्रकार महाकवि ने विदूषक द्वारा चित्र की विशेषता दिखलाते हुए, उसके विचक्षणता या विवेक को भी बड़े सूक्ष्म एवं सांकेतिक रूप से प्रकट किया है।

चित्रसूत्रकार हमें इस सम्बन्ध में कुछ और सूचनाएं भी देते हैं जिनका प्रयोग हम शाकुन्तलम् में उपस्थित उक्त चित्र पर आरोपित कर सकते हैं। वे कहते हैं कि (मानव) आकृति के अंग प्रत्यंग को ''दृढोपचित'' और ''वर्तुल'' होना चाहिए साथ साथ ''घन'' और ''उल्बण'' नहीं होना चाहिए। ये ''नागर'' प्रकार के चित्रों की विशेषताएं हैं।[12] ये उक्तियाँ कुछ सांध्य भाषा में हैं फिर भी इनसे एक ''स्निग्ध'' आकृति का भाव उत्पन्न होता है जो ''घन'' (स्थूल) और ''उल्बण'' (बड़ा और विकट) नहीं होनी चाहिए। चित्रसूत्र के दृढ़ोपचित सर्वाङ्ग'' को हम किसी किसी प्रकार के ''निम्नोन्नत प्रदेश'' से मिला सकते हैं, इसी प्रभाव (इफेक्ट) द्वारा वर्तुल अंगों से विदूषक के कथन ''स्खलतीव में दृष्टि:'' की कुछ सीमा तक व्याख्या की जा सकती है। निम्नोन्नत प्रदेशों द्वारा महाकवि ने ''डौल'' (मॉडलिंग) की ओर संकेत किया है। आशय है कि शरीर के निम्नोन्नत प्रदेश दिखलाने पर ही स्निग्ध आकृति तैयार हुई। इसे हम भवभूति के ''उत्तररामचरित'' के एक उद्धरण द्वारा स्पष्ट करना चाहेंगे। इस नाटक के प्रारंभ में ही एक चित्रशाला का वर्णन है जिसमें रामकथा चित्रित थी। उसे देखते हुए सीता, राम लक्ष्मण की आकृतियों को देखकर उन्हें स्निग्ध-मांसल कहती हैं।[13] अजंता के चित्रों में भी यह विशेषता मिलती है।[14] वाल्मीकि ने भी श्रीराम का ऐसा ही मांसल स्वरूप उपस्थित किया है, उन्हें ''गूढ़-जत्रु:'' कहा गया है।[15] एक प्रकार से यह एक महापुरुष लक्षण है। शाकुन्तलम् में वदूषक की ये विश्लेषात्मक उक्तियाँ पारंपरिक हैं। केवल ''मधुरावस्था'' में थोड़ी बहुत मौलिक समीक्षा है जो ''भाव'' के समकक्ष है। इसके उपरान्त भी महाकवि ने एक शास्त्रीय उक्ति दी है जो उक्त ''षडंग'' विभाजन के ''सादृश्य'' से मेल खाती है इसमें सानुमती कहती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरी सखी (शकुन्तला) सामने ही उपस्थित है।[16] इसके द्वारा सानुमती राजा (चित्रकार) की निपुणता भी सूचित करती है।[17] पर हम यहाँ एक सूक्ष्मता भी पाते हैं। महाकवि ने दिखाया है कि सानुमती की इस उक्ति में केवल बाह्य आकृति के प्रति उसका उद्गार मिलता है। इसके विपरीत विदूषक का इस क्षेत्र में शास्त्रीय ज्ञान था, ऐसा प्रकट होता है। इसके बाद राजा का जो कथन है, उसमें कई बारीक बातें हैं उन्हें मैं बाद में लूंगा।

संप्रति, वर्तमान से सम्बन्धित अन्य सूचनाओं को लेते हुए हम आगे बढ़ते हैं। थोड़े बाद हमें ज्ञात होता है कि चित्र अभी अधूरा था। इनमें दो महत्त्वपूर्ण स्तर बाकी थे: इसकी पृष्ठभूमि अभी नहीं बनी थी, महाकवि ने उसके माध्यम से कण्व ऋषि के आश्रम के "सैरे" (लैण्डरस्केप) का अच्छा शब्द चित्र दिया है, सुप्रसिद्ध श्लोक के अंतर्गत है।[18]

ध्यान देने योग्य है कि आज भी परंपरागत चित्रकार पृष्ठभूमि का चित्रण अन्त में करते हैं। इस चित्र में पृष्ठभूमि का एक बड़ा संश्लिष्ट शब्दचित्र है जिसमें आश्रम का हरा भरा और भरा पूरा, सजीव वातावरण है, महाकवि ने उसका काव्यमय अंकन किया है। यह विस्तृत पृष्ठभूमि थी जो स्वभाव जन्य (रियलिस्टिक भी)। अजन्ता के चित्रों में हमें जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें इस श्रेणी की स्वभावजन्य (रियलिस्टिक, नैचुरलिस्टिक, मि० 'स्वभावोक्ति') पृष्ठभूमि उपलब्ध नहीं हैं। ये सभी अत्यन्त परंपरागत रूप में है। यदि हम **शाकुंतलम्** वाली इस पृष्ठभूमि के समकक्ष चित्रणों के वास्तविक उदाहरणों को देखें तो परवर्ती चित्रशैलियों में ही इस श्रेणी के अंकन उपलब्ध हैं, जो स्वयं में एक विचारणीय प्रश्न है। दूसरी ओर **विष्णुधर्मोत्तर०** चित्रसूत्र (अध्याय 42) में जिस प्रकार चित्र का वातावरण दिखलाया गया है, वह शाकुंतलम् वाले पृष्ठभूमि-अंकन के बिल्कुल समानांतर है। यह "रूपनिर्माण" अध्याय के अन्तर्गत है। परवर्ती चित्रकार इस प्रकार के लैंडस्केप को "सैरा" कहते थे पर उनमें भी परंपरागत स्वरूप ही हैं, वास्तविक प्रकृति निरीक्षण के आधार पर चित्रण दुर्लभ हैं।

इसके पश्चात् हम स्वयं शकुंतला की आकृति को लेते हैं। ऊपर हम देख चुके हैं कि वह आकृति बाह्य रूप से "तैयार" थी (फिनिश हो चुकी थी)। इसकी पुष्टि परवर्ती उद्धरणों से भी होती है (दे० नीचे)। परन्तु इसमें "मोती महावर" का काम अभी बाकी था। यह मुहावरा भी परंपरागत चित्रकारों का है। आकृतियों में आभूषण आदि के प्रयोग की, आकृति तैयार हो जाने के बाद की, यह प्रक्रिया है। अत: यहाँ भी हम उसे इसी क्रम में पाते हैं। पृष्ठभूमि या "सैरा" तैयार होने के उपरान्त इसकी बारी आई। इसकी अंक के 8वें श्लोक में राजा द्वारा इसका उल्लेख है। पर वन्य-कन्या होने के नाते शकुंतला का शृंगार फूलों या वनस्पतियों से होने का यहाँ उपक्रम है।[19] यह महाकवि के सौंदर्यबोध के अनुरूप ही है।

उपर्युक्त श्लोक के अंत होते-होते हम शकुंतला की स्तनपट्टिका के अंकन तक पहुँच जाते हैं। चित्र में दुष्यन्त इसे मृणाल के सूत्रों, जो "शरच्चन्द्र की किरणों" के समान थे, से बनाने (चित्रित करने) का उपक्रम कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि कोमल भावों के साथ-साथ महाकवि ने यहाँ कुछ और भी संकेत दिए हैं। वस्तुत: प्रस्तुत वातावरण में तो वल्कल होना उचित होता पर संभवत: चित्रात्मकता की दृष्टि से महाकवि ने यहाँ झीने वस्त्र का भी संकेत है। प्राचीन चित्रों में ही नहीं, मूर्तियों में हम झीने वस्त्रों का भरपूर प्रयोग पाते हैं। महाकवि कालिदास ने भी झीने वस्त्रों के संकेत बार बार दिए हैं यथा रघुवंशम् में समुद्र की ओर इंगित कर भगवान् रामचंद्र सीता जी को दिखलाते हुए कहते हैं कि महावराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार करके (विवाह कर लाते हुए) प्रलय के कारण उफनता समुद्र, वक्त्राभरण (घूंघट) जैसा हुआ अर्थात् वह जल के समान झीना था।[20] कुश अपनी युवतियों के साथ स्नान करने गए, दृश्य में उन स्त्रियों के वस्त्र इतने झीने कि नि:श्वास से भी दूर उड़ जायं।[21] इसी प्रकार **रघुवंशम्** में ही परित्यक्ता अयोध्या के वर्णन में हम पाते हैं कि रंग उड़ जाने का बाद स्तम्भों पर अंकित स्त्री आकृतियों का स्तन-उत्तरीय सर्पो के निर्मोक (केंचुल) द्वारा बनता है[22] जो स्वयं में झीना होता है।

अब हम दुष्यंत के चित्र की विकास-पद्धति पर पुन: आते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि ये प्रक्रियाएं चित्र निर्माण के परवर्ती स्तर की हैं। महाकवि ने पहले ही चित्र की अन्य विशेषताएं, कथोपकथन द्वारा सूचित कर दी हैं अब हम चित्र की "तैयारी" के प्राय: अंतिम स्तर (फाइनल स्टेज) पर पहुँच चुके हैं। परंपरागत चित्रकार आज भी झीने वस्त्र का काम (पारंपरिक शब्दावली में 'झीना ओढ़ाना') प्राय: अन्त में करते हैं। यहाँ क्रम में थोड़ा परिवर्तन है, हल्का-सा ही सही। परंपरागत चित्रकार "झीना ओढ़ाने" के बाद "मोती महावर" का काम करते हैं, यहाँ महाकवि ने उसका क्रम

उलट दिया है, वह भी एक ही श्लोक में। यह काव्य की दृष्टि से सही हो सकता है। पर उन्होंने इसकी व्याख्या भी पात्रों द्वारा करा दी है और शरच्चन्द्र की मरीचि के समान कोमल स्तनांतर (पट) को शिखर पर (क्लाइमेक्स) पर रखा है। इसकी कुंजी इस श्लोक के ठीक पहले सानुमती के उद्गार में है जो विदूषक की जिज्ञासा "किमिव" से उद्भूत होता है, "वनवासस्य सौकुमारस्य च यत्सदृशं भविष्यसि" और इस समूचे कार्य कलाप का मूल राजा की उस उक्ति में है कि मैं शकुंतला के प्रसाधन को (अंकित) "करना" भूल ही गया था। अत: सानुमती ने शिरीष और मृणाल सूत्र जैसे अति कोमल उपादानों की व्याख्या पहले से ही अपने उद्गार में करदी थी।

इसी प्रकार महाकवि ने इसके पूर्व चित्र के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएं दे रखी थी, क्रमबद्ध रूप में उन पर विचार करने का अब अवसर आया है। हम पाते हैं कि यहाँ चित्र में शकुंतला का सादृश्य मात्र न था वरन् एक "संयोजन" (कंपोजिशन) था और विषय "भ्रमर बाधा" वाला प्रसंग था जिसे राजा ने छिपकर देखा था।[23]

यहां संक्षेप में इस दृश्य के काव्य एवं कलागत सौन्दर्य पर भी दो शब्द कहना अपेक्षित है जो इस शुष्क व्याख्या का मर्मस्थल है। किसी भी काव्य-प्रेमी को यह स्पष्ट होगा कि भ्रम की अवस्था में यहाँ भ्रमर अर्थात् धृष्ट नायक के प्रति उक्ति का अन्योक्ति द्वारा अंकन है न कि किसी प्रकृति प्रेमी भ्रमर अथवा राजा का।[24] हमारे प्रस्तुत उपर्युक्त चित्र का वही दृश्य है। इसको स्वयं नायक (राजा) द्वारा कहला भी दिया है: "ननु वार्यताम् एष धृष्ट:"[25]। इस कथोपकथन की कुछ तो शृंगारिक (रूमानी) पृष्ठभूमि है और कुछ इसी मिस से, चित्रगत दृश्य का वर्णन भी है। इसके ठीक पूर्व ही संकेत द्वारा हमें इसकी सूचना मिल चुकी है कि यह घटसेचन वाला दृश्य है जो प्रथम अंक में उपस्थित हुआ था।[26] इस प्रकार यहाँ "स्मृति" संचारी का प्रयोग है (देखिये इसी अंक के श्लोक 21 में "स्मृतिकारी" शब्द)। यहां भी महाकवि ने नाटकीय तत्त्व (ड्रैमेटिक एलिमेंट्स) का प्रयोग किया है, इसके लिए विदूषक की कभी जिज्ञासा है, कभी उसका चापल्य। वह कहता है कि यहाँ तो तीन महिलाएं हैं, सभी सुंदरियाँ, इनमें कौन देवी शकुंतला है।[27] इस पर सानुमती कहती है, "यह मोघ-दृष्टि",[28] (काशी की प्रचलित बोली में 'जिसे आंख' नहीं है) इस प्रकार के सौन्दर्य से अनजान है।" आज भी यहाँ की बोलचाल में इसकी विपरीत स्थिति में हम कहते हैं, अमुक को इसकी 'आंख है', वही तात्पर्य है। महाकवि ने इस कला की परख को कैसे सुंदर ढंग से इंगित किया है और विदूषक के उत्तर से संतुष्ट होकर राजा ने उसे "निपुण" कहा। महाकवि ने यहाँ विदूषक की रक्षा तो कर डाली पर सौंदर्यशास्त्र सम्बन्धी प्रश्न बना ही रहा। विदूषक ने शकुंतला के सौंदर्य की तनिक भी बात न की, प्रसंगवश उसे पहचाना। सौन्दर्य (लावण्य) वाली बात राजा पहले ही कह चुका था (षष्ठ अंक श्लोक 14), नकारात्मक रूप में ही सही (दे० नीचे)। विदूषक द्वारा महाकवि ने दृश्य की "जुहान" (सेटिंग) मात्र दे दी। विदूषक कहता है: "ऐसा सोचता हूँ कि सीचने के कारण थकी सी खड़ी चित्रित की गई, शकुंतला है, इत्यादि। उसके साथ वाली दोनों उसकी सखियां हैं।"

चित्र अभी अधूरा था (राजा—"अर्ध-लिखितम् एतद्....." श्लोक 15 के बाद) अत: वर्तिका (तूलिका) मंगाई गई। चित्र में कुछ "दोष" आ गए थे। हम महाकवि कालिदास से प्राप्त दो अन्य संदर्भों से इनका मिलान कर सकते हैं। परन्तु **शाकुंतलम्** में चित्र के "दोष" (डेटेरियोरेशन) अधिक स्पष्ट रूप से बतलाए गये हैं[29] एवं इसमें कुछ पारिभाषिक शब्द भी मिलते हैं। राजा कहता है, "मेरी अंगुली के प्रस्वेद (पसीने) से "रेखाप्रांत" मलिन हो गए हैं एवं मेरे उच्छ्वास से उत्पन्न आंसू के टपकने से (शकुंतला की आकृति के) कपोल पर की "वर्तिका" पर दाग (?) दिखलाई पड़ गया है।[30]

हम यहाँ "रेखाप्रांत", "मलिन", और "वर्तिका" इन तीन शब्दों पर थोड़ा विचार करें। रेखा-प्रांत आज की परंपरावाले "सरहद" शब्द के समानांतर है जो आकृति का स्वरूप निर्धारण करती है। पसीने की गीली ऊँगली रखने से वह "मलिन" या "लिप" गई (अंग्रेजी, स्मियर्ड)। यह शब्द हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि शिल्प शास्त्रों या चित्रसूत्रों में आकृति के स्थूल दोषों (शास्त्रीय विधान वाले दोषों को नहीं, यतो चित्रदोषा: प्रकीर्तिता:) की न तो चर्चा मिलती न

तत्सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द। "वर्तिका" का सामान्यत: अर्थ तूलिका होता है, इसी अंक में थोड़ा पहले (श्लोक 15 के ठीक बाद)। राजा चतुरिका को आज्ञा देता है कि "वर्तिका" लाओ, वहाँ चित्र बनाने के उपादान, मुख्य रूप से तूलिका से अभिप्राय है। परन्तु वर्तमान प्रसंग में "वर्तिका" का कपोल के रंग (="चेहरई") से अभिप्राय जान पड़ता है अर्थात् धब्बा पड़ गया था।

उपर्युक्त संदर्भ हमें चित्र के बाह्य सम्बन्ध में सूचनाएं देते हैं परन्तु इससे भी अधिक मार्के का संदर्भ इसी अंक के 14वें श्लोक में मिलता है:

यद्यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तदन्यथा ।
तथापि तस्याः लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥

यह स्वयं दुष्यंत की उक्ति है, उपर्युक्त विवरणों के पहले ही उपस्थित होती है, चित्र की विदूषक द्वारा गहराई से की हुई प्रशंसा और सानुमती द्वारा राजा के चित्रकार रूप में तारीफ करने के बाद मिलती है (दे० ऊपर)। यह चित्र-निर्माण के अंतर्गत की प्रक्रिया है। यहाँ राजा के द्वारा महाकवि ने चित्र के सौंदर्यशास्त्र पर अपने विचार कैसे सुंदर और सार्थक रूप में प्रकट किए हैं! ये सार्वजनीन उक्तियां हैं, एक उदाहरण-विशेष का लेकर। अतएव इन पर थोड़ा विस्तृत विचार अपेक्षित है। राजा कहता है कि चित्र में जो जो "असाधु" है (ठीक रूप में चित्रित नहीं हुआ है) उसे मैं "साधु" कर रहा हूँ अर्थात् सुधार रहा हूँ।[31]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह कौन-सा "असाधु" था जिसे राजा "साधु" कर रहा था। क्या वह स्थूल था या भावनात्मक अथवा इन दोनों के बीच की स्थिति में? हम यह तो देख ही चुके हैं कि चित्र अधूरा था और उसमें कुछ विकृतियाँ (धब्बे आदि) भी आ गई थीं। राजा ने चित्र को पूरा किया होगा। (दे० ऊपर, "कृतं न कर्णार्पित बंधनं सखे..." आदि) में अपर्युक्त "सुधारने" की प्रक्रियाओं से कहीं ऊपर, चित्र की भावनात्मक "सुधारने" की स्थिति आ जाती है जो श्लोक की दूसरी पंक्ति में स्पष्ट हुई है:

तथापि तस्याः लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ।

ऊपर हम विदूषक की उक्ति में ऐसे संकेत देख चुके हैं जो यशोधर द्वारा उद्धृत "चित्र-षडंग" के समानांतर है, उनमें एक ओर भाव है तो दूसरी ओर आलेखन की विशेषताएं जिनके कारण माधव्य की दृष्टि स्खलित सी (फिसलती सी) जाती है। पर यहाँ शकुन्तला के लावण्य को अंकित करना अभीष्ट है जो चित्र की चरम निष्पत्ति है। उपर्युक्त "चित्र-षडंग" में लावण्य का स्थान रूपभेद, प्रमाण और भाव के बाद तथा सादृश्य और वर्णिका-भंग के पूर्व आता है। इनकी स्वतंत्र व्याख्याएं और लावण्य के पूर्व और उत्तर वाली स्थितियों पर विचार करने का यहाँ अवकाश नहीं है, वे सार्थक जान पड़ते हैं— इतना ही यथेष्ट है। यहाँ राजा लावण्य की खोज में है, चित्र में बार बार सुधार करता जाता है और उसे कभी कुछ सफलता और कभी कुछ असफलता हाथ लगती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि चित्र की अन्य विशेषताओं के अंकन में जिन पर ऊपर विचार हो चुका है, कुछ ऐसी ऊहापोह वाली स्थिति नहीं है बल्कि सपाटबयानी है जैसे शकुंतला के अलंकरण आदि या दृश्य की पृष्ठभूमि का अंकन मानो एक बार में ही अंकित हो जायेंगे। पर जब चित्रकार लावण्य की खोज में होता है तो उसे (कला) सृजन की राह में भटकना होता है। वर्तमान स्थिति में राजा उसे कुछ-कुछ पकड़ सका है। यहीं महाकवि की सूक्ष्म दृष्टि है और वैसी ही बारीक उसकी अभिव्यक्ति भी कि वह लावण्य "कुछ-कुछ" प्रकट हुआ है। कला की यही सांध्य भाषा है।[32] समयाभाव के कारण यहाँ इस पर विस्तार करने का लोभ संवरण कर रहा हूँ।

पर इसी उक्ति में कहा गया है कि वह लावण्य, रेखा द्वारा तनिक तनिक स्पष्ट हुआ है। यह विरोधाभास नहीं है कि एक ओर लावण्य तो भावनात्मक है और रेखा स्थूल है। तब चित्र के अन्य अवयवों को एक प्रकार से तिरोहित कर रेखा को किस प्रकार प्रधानता दी गई। पर चित्र में रेखा का भौतिक महत्त्व है जिसे उक्त चित्र-सूत्र ने विस्तार से समझाया

है।[33] भास के "**दूतवाक्यम्**" नाटक में "युक्त-लेखता" को प्रकाशित किया गया है। पर यहाँ महाकवि कालिदास ने रेखा के अंतर्गत चित्र के सभी अवयवों को समाहित कर दिया है। क्योंकि वही रूप (आकृति) की जननी है। संभवत: इसी को दृष्टि में रखकर विष्णुधर्मोत्तर० "चित्रसूत्र" में कहा गया है :

रेखां प्रशंसन्ति-आचार्या वर्तनां च विचक्षणा:
स्त्रियो भूषणमिच्छन्ति वर्णाढ्यमितरेजना: ॥ (3.41.10)

अब यह प्रश्न रह जाता है कि राजा (दुष्यंत) की उपर्युक्त उद्देश्यपूर्ति की सफलता में कौन कौन संकेत हैं पर इससे बहुत विस्तार होने की आशंका है।

पाद टिप्पणी

1. इस आलेख में हम इस ग्रंथ का उल्लेख "शाकुन्तलम्" द्वारा कर रहे हैं।
2. सभी संदर्भ आचार्य पं० रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित "कालिदास ग्रन्थावली", बनारस—1986 संस्करण के लिए गये हैं। —लेखक
3. प्रिये, अकारण-परित्याग.....जन: पुनर्दर्शनेन। षष्ठ अंक
4. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेत: ॥ 1.3
5. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
   पर्युत्सकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तु: । 5.2
* मिलाइये "चित्रे निक्षिप्त"....।
6,7. मधुरावस्थान-दर्शनीयो-भावानुप्रवेश:। स्खलतीव मे दृष्टि: निम्नोन्नत-प्रदेशेषु।
   दर्शनीय:, मिलाइये .... प्रेक्षणीयं ददर्श, मेघदूतम्, पूर्व मेघ, 2
8. रूपभेदा: प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
   सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडङ्गकम्।।—जयमंगला, कामसूत्र III
9. अहो एषा राजर्षे: निपुणता। जाने सखी अग्रतो मे वर्तते इति (दे. नीचे)
10. विष्णुधर्मोत्तर. 3.41.4
11. रेखां प्रशसन्त्याचार्या: वर्तनां च विचक्षणा:।। वही, 41.11
12. चित्रं तं नागरं ज्ञेयं स्वल्प-माल्य-विभूषणम्।। वही, 41.4
13. मूल की अनुपलब्धता के कारण यहाँ इस अवतरण को "भारत की चित्रकला" (21 ख) में उसके हिन्दी अनुवाद द्वारा देकर ही संतोष करता हूँ :

    "फिर मिथिला के वृत्तांत हैं। इन्हें देखकर मैथिली कहती हैं, 'अहो यहाँ खिले हुए नव-नील कमल से सांवले, स्निग्ध, मसृण, मांसल, सुभग देहवाले आर्यपुत्र को बनाया है.... विस्मय-चकित मेरे पिता (जनक) एकटक उनके भोले मुंह को, जिस पर काकपक्ष शोभित हैं, देख रहे हैं।"
14. उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध पद्मपाणि बोधिसत्त्व, गुफा सं० अन्यत्र भारी बदन वाली स्त्रियां भी हैं।
    उदाहरणार्थ तथाकथित "ब्लैक प्रिंसेज" (गुफा...) संभवत: नन्द की पत्नी, सुन्दरी
15. वाल्मीकीय रामायणम् ...
16. जाने सखी अग्रतो मे वर्तते इति ॥ अंक 6, श्लोक 13-14 के बीच।
17. अहो एषा राजर्षे: निपुणता।। वही।
18. कार्या सैकतलीन हंस मिथुना.... कंडूयमानां मृगीम्।। (6.17)
19. मिलाइये मेघदूतम् : हस्ते लीलाकमलं-अलके... आदि। (उत्तरमेघ, श्लोक-2)

20. मुहूर्त-वक्त्राभरणम् बभूव।। रघुवंशम् 13-8
मि० आज का शब्द, "आबेऽर वाँ"
21. नि:श्वास-हार्याशुक ... वही 16.43
22. ... स्तनोत्तरीयाणि ... निर्मोक पट्टा:।। रघुवंशम् 1617
23. चपलांगां दृष्टिं स्पृशसि वेपथुमतीं। ... वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर! हता: त्वं खलु कृती। प्रथम अंक, श्लोक 22
24. इसे मैं गुरुवर स्व. आचार्य पं. बलदेव प्रसाद जी उपाध्याय से दुबारा तिबारा पूछने पर और उनकी "व्यवस्था" पर दे रहा हूँ। —लेखक
25. शाकुंतलम्, षष्ठ अंक, श्लोक 18 एवं 19 के बीच के अंश
26. वही, प्रथम अंक, श्लोक 16 एवं 23 के बीच के अंश
27,28. वही, षष्ठ अंक, श्लोक 14 एवं 15 के बीच के अंश
29. रघुवंशम् सर्ग 16, श्लोकं 16 आदि
30. मेघदूतम्, उत्तरमेघ, श्लोक 8 (नेत्रा नीता:....दोषमुत्पाद्य सद्य:)।।
31. शाकुंतलम्, षष्ठ अंक, श्लोक 15।
32. यहाँ मैं सामान्य रूप से प्रचलित अर्थ दे रहा हूँ जो स्वीकार्य है। परन्तु गुरुतुल्य आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के नेतृत्व में एक नया ही अर्थ प्रचलित हुआ है जिसका अनेक लेखकों ने उपयोग किया है। मेरी क्षुद्र दृष्टि में वह अस्वीकार्य है: जिसके अनुसार "क्रियते अन्यथा" का आशय है, उसका विरूपण (डिस्टॉर्शन) करना। भारतीय कलाओं, विशेष रूप से प्राचीन भारतीय चित्रकला में इस प्रकार के विरूपण (डिस्टॉर्शन) का कोई स्थान न था। वह तो आधुनिक कलाओं की नई दृष्टि है। अत: हम यहाँ अचार्य द्विवेदी जी द्वारा प्रचलित उक्त "अन्यथाकरण" को स्वीकार करने में, सविनय, असमर्थ हैं। हमारे इस दृष्टिकोण के पक्ष में कुछ तर्क भी हैं पर उनका यहाँ अवसर नहीं है।
33. विष्णुधोंत्तर० चित्रसूत्र में ठीक यही शब्द "किंचिद्" एक अन्य सन्दर्भ में उपस्थित होता है: यत्किंचिद् लोकसादृश्यम्..., वही, 41.2

* * *